'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ३१ | वाराणसी, शनिवार, १४ मार्च, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

सर्वोदय-सम्मेलन का अंतिम प्रवचन — सर्वोदयनगर (अजमेर) १-१-'५९

शुद्धि और व्यापकता में कोई विरोध नहीं !

वेदान्त का अर्थ है—सभी काल्पनिक धर्मों का अन्त !!

गंगोत्री में गंगा बहुत निर्मल और परिशुद्ध होती है, पर उसकी धारा छोटी होती है। आगे-आगे उसका प्रवाह जोरदार और शुद्ध होता है—उसका विस्तार होता जाता है। सागर-संगम के स्थान पर तो वह अत्यधिक बढ़ जाता है। फिर भी जैसे-जैसे उसका विस्तार बढ़ता है, वैसे-वैसे स्वच्छता और निर्मलता कम होती है। दुनिया में बहुत दफा ऐसे ही अनुभव आते हैं कि जहाँ संख्या-वृद्धि हुई, वहाँ गुण का कुछ ह्रास हुआ और जहाँ गुण पर जोर दिया गया, वहाँ संख्या कम हुई। मैं इस घटना पर बहुत चिंतन करता हूँ। सभी चिंतन का मूल आधार या परम आदर्श परमेश्वर है। जब उसकी तरफ देखता हूँ, तो यही दीख पड़ता है कि वह परम शुद्ध है और परम व्यापक भी। वहाँ शुद्धि और व्यापकता का विरोध नहीं दीखता, दोनों एक साथ दीखते हैं। हम आसमान की तरफ देखते हैं, तो यही दृश्य दीख पड़ता है कि उसकी व्यापकता के साथ उसकी निर्मलता में कोई कमी नहीं है—वह परम निर्मल और परम व्यापक है। लेकिन गंगा की हालत कुछ दूसरी ही है और हमारी हालत गंगा के समान है। आखिर ऐसा क्यों ? हम परमेश्वर की प्रतिमा नहीं बन सकते हैं। उसके साथ हमारे जीवन और अनुभव का मेल नहीं बैठता, इसकी क्या वजह है ?

एकाग्रता में समग्रता साधी जाय

इस पर जब मैं बहुत सोचता हूँ, तो मालूम होता है कि जो एकदेशीय रहकर शुद्धि की कोशिश करते हैं, उनकी शुद्धि संकोच में टिकती है। हमारा चिंतन एकदेशीय होता है, इसीलिए व्यापकता याने संख्या और शुद्धि याने गुण के बीच में विरोध पैदा होता है। व्यापक चिंतन में यह विरोध लाजमी नहीं है। हमें सोचना पड़ेगा कि हमारा चिंतन कहाँ तक ठीक चलता है ? हम एक बात निकालते हैं, तो दूसरी बात ढीली पड़ जाती है। दूसरी निकालते हैं, तो पहली ढीली पड़ जाती है और तीसरी निकालते हैं, तो दोनों ढीली पड़ जाती हैं। इस तरह एकाग्रता और समग्रता में बाधा पहुँचती है। ऐसा जहाँ होता है, वहाँ कहना होगा कि एकाग्रता की उस कल्पना में ही कोई दोष है। कोई ऐसी युक्ति सधनी चाहिए, जिसमें एकाग्रता और समग्रता एकत्र हो सके। जब कि साधक अक्सर सब लोगों को टालकर ध्यान के लिए एकान्त में जाते और वहाँ परमेश्वर के साथ एकरूप होने की कोशिश करते हैं, मीरा सारे बन्धन तोड़ दुनिया के सामने नाचती है और कहती है—'मैं तो गिरधर आगे नाचूँगी।' कहना पड़ेगा कि अवश्य ही उसे कोई ऐसी युक्ति सध गयी है, जिससे समग्रता में उसकी एकाग्रता बाधक नहीं होती है। कोई ऐसी वस्तु उसे हासिल हो गयी है, जिससे विविध रूपों से मंडित सारी सृष्टि में उसको एकता की अखंड अनुभूति होती है। किन्तु जब हम एक चीज पर जोर देते हैं, तो दूसरी चीज ढीली पड़ जाती है। बाबा ने सर्वोदय-पात्र की बात शुरू की, तो कुछ लोग समझने और पूछने भी लगे कि आपका ग्राम-दान का विचार तो पीछे रह गया। यह चिंतन का दोष है। मैं यह सूचित करना चाहता हूँ कि हमें अपने का चिन्तन दोष देखना और संशोधित करना चाहिए।

पक्षमुक्त और पक्षातीत

पक्षमुक्त और पक्षातीत—एक नयी परिभाषा है। कल मुझे उस पर कुछ प्रकाश मिला और मैं उसे बोल गया। उसका पूरा अर्थ अभी ध्यान में नहीं आया, धीरे-धीरे आयेगा। लेकिन परिणाम क्या हुआ, आपने देख ही लिया। इससे गोकुलभाई के दिल को ठंढक पहुँची और उन्हें हिम्मत हुई। मैं अपने मन में सोचता रहा कि गोकुलभाई जैसे मनुष्य को जिस विचार में संकोच मालूम हो, निश्चय ही उसमें कुछ एकांगिता, गलती या दोष होना चाहिए। लेकिन मेरा मन दार्शनिक होने से किसी दरवाजे को खोलते समय संभावित खतरों पर अवश्य सोचेगा। कल मैंने दरवाजा तो खोल दिया, लेकिन उसमें जो खतरे हैं, वे मेरी आँखों से ओझल नहीं हुए हैं। वे मौजूद हैं, फिर भी यह समझकर दरवाजा खोल दिया कि अगर वास्तव में हममें गुण हैं, तो संख्या-वृद्धि के साथ गुण-वृद्धि भी हो जायगी। दृष्टि व्यापक करने से दोनों में विरोध न आयेगा। फलस्वरूप आपने देख ही लिया कि गोकुलभाई ने बहुत ही भावनायुक्त चित्त से यहाँ जाहिर कर

दिया कि 'राजस्थान में शांति-सैनिकों की जो अपेक्षा की गयी है, अब वह पूरी हो सकती है।'

यह छोटी बात नहीं है। हमने शान्ति-सैनिकों की जो माँग की है, उसमें एक बाजू प्राणार्पण करने की तैयारी है, तो दूसरी बाजू से नित्य-सेवा की प्रतिज्ञा। रविशंकर महाराज कह रहे थे कि 'प्राणार्पण की पहली प्रतिज्ञा तो बहुत आसान है, लेकिन रोजमर्रा का काम करने की, नित्य-सेवा की प्रतिज्ञा 'नित्य-मरण' ही है। यह बहुत ही कठिन काम है। इसलिए अगर आप यह दूसरी कैद न रखें, तो संभव है, प्राणार्पण की तैयारी करनेवाले लोग मिल जायँ।' महाराज के कहने में कुछ वजन है, क्योंकि वे जो कुछ कहते हैं, अनुभव से ही कहते हैं। तात्पर्य यह कि यह भी कठिन है और वह भी कठिन है, ऐसी द्विविध कठिन प्रतिज्ञा करनेवाले बहुत तादाद में मिलेंगे, ऐसी आशा नहीं है। अतः हमें किसी एक व्यापक दृष्टि से सोचना चाहिए। पहले हमारी दृष्टि में कुछ संकोच था, वह अब मिट गया है।

एकांगीपन का परिहार करें

मैं समझता हूँ कि गुण और संख्या का विरोध वहीं होता है, जहाँ प्रयत्न एकांगी होता है। ईसामसीह ने यूरोप और एशिया में नव-विचार फैलाने का प्रयत्न किया। उनके उत्तम शिष्य थे और विचार भी बहुत ही सुन्दर थे। दुश्मन पर प्यार करना, अपनी सभी चीजें सबके साथ बाँटकर खाना, एक ही परमेश्वर मानना, ये कोई ऐसी बातें नहीं, जिसमें वैचारिक आक्षेप आयें। जीवन की इतनी सर्वाङ्गसुन्दर दृष्टि लेकर वे निकले थे। लेकिन बाद में उनके शिष्यों द्वारा उसमें एक ऐसी चीज दाखिल हो गयी, जिससे विचार अच्छा होने पर भी वह एकदेशीय बन गया और उसका परिणाम यह हुआ कि जब तक संख्या नहीं बढ़ी थी, तब तक तो गुण था और जहाँ संख्या बढ़ने लगी, वहीं गुण छूट जाने का अनुभव आया। वह एकांगी विचार यही था कि 'एकमात्र ईसामसीह ही परमेश्वर के पुत्र हैं और इन्हींके द्वारा हम परमेश्वर तक पहुँच सकते हैं।' उसके बजाय अगर वे यों कहते कि 'हम सब मानव मात्र परमेश्वर के पुत्र हैं और उन पुत्रों में एक उज्वल पुत्ररत्न ईसामसीह भी है', तो कोई उज्र न होता। इसी के परिणाम-स्वरूप यह एकदेशीय विचार बना।

अब मैं जरा आहिस्ता-आहिस्ता चिन्तन कर रहा हूँ। पहले सर्वोदय-सम्मेलन की बात कह रहा हूँ। गांधीजी के प्रयाण के बाद सेवा-ग्राम में एक सम्मेलन हुआ, तो उस समय उसके नामकरण की बात चली। कुछ लोगों ने कहा कि इसे गांधीजी का नाम दिया जाय। मैंने कहा 'ऐसा क्यों करते हैं? 'सर्वोदय' शब्द गांधीजी ने ही दिया और वह बड़ा ही सुन्दर है। उसे गांधीजी जानते थे और उससे भी अधिक प्राचीन आधार है। इसलिए उसीको हम क्यों न चलायें? उसीको हम चलायें और गांधीजी का नाम न रखें, तो बेहतर होगा।' खुशी की बात है कि लोगों ने यह बात मान ली और उनकी समझ में वह बात आ गयी। कुरान में कहा है—'ला इलाही इल् इल्लाह' और उसके साथ जोड़ दिया 'महंमदुर्रसुल उल्लाह'। याने ईश्वर के सिवा कोई महान् नहीं, कोई पूजनीय नहीं और मुहम्मद हमारा रसूल है। इसी तरह अगर हम भी यह कहते कि 'सत्य-निष्ठा और अहिंसा हमारी उपास्य देवता हैं और गांधीजी हमारे गुरु हैं,' तो हम निःसन्देह अपने सद्विचार में एकदेशीय विचार दाखिल करते। उसके परिणाम-स्वरूप यह आपत्ति आती कि संख्या बढ़ती, पर गुण घटता; लेकिन वह आपत्ति टली। क्योंकि हमने उस नाम को अपने हृदय में रखा और वाणी में नहीं आने दिया। तुकाराम की एक बड़ी ही अद्भुत उक्ति है। सहज स्फूर्ति से उन्होंने कहा है।

आहे ऐसा देव। वदवावी वाणी,
नाहीं ऐसा मनीं। अनुभवावा॥

याने परमेश्वर है, ऐसा वाणी से बोलना चाहिए और वह नहीं है, ऐसा मन में अनुभव करना चाहिए। तुकाराम भी उसी कोटि के मनुष्य थे, जिस कोटि के हमारे रविशंकर महाराज हैं। वे ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं हैं, जो भी थोड़ा पढ़ा, उसे उन्होंने पचाया है। उनकी यह युक्ति हमें बड़ी कारगर मालूम होती है। अगर आप यह नहीं करते, तो आप एकदेशीय और संकुचित हो जाते हैं। अगर आप हैं, तो 'हैं' में नहीं भी है। आपका पूर्ण क्रियापद नहीं है। वह इतना व्यापक है कि अन्तर्गत भी है। इसलिए आप नहीं कहते हैं, तो आपके अन्तर में वह है नहीं और अगर आप हैं कहते हैं, तो आपके अन्तर में नहीं है, ऐसा अनुभव आपको करना होगा। परमेश्वर है यह बोलने की बात है और नहीं है, यह अन्तर में अनुभव करने की बात है। इस तरह स्पष्ट है कि जहाँ चिन्तन में एकदेशीपन आ जाता है, वहाँ गुण और संख्या-विरोध खड़ा होता है। किन्तु जहाँ एकदेशीपन नहीं, वहाँ इस प्रकार का भय नहीं रहता। इन दिनों इसी चीज पर मेरा चिन्तन चल रहा है।

सत्याग्रह की ही बात लीजिये। प्रश्न यहीं से आरंभ होता है कि सत्याग्रह का लोकशाही में क्या स्थान है? एक कहता है 'स्थान नहीं है', तो दूसरा कहता है 'है'। किन्तु दोनों ही सत्याग्रह की शुद्ध कल्पना से कोसों दूर हैं। वे सत्याग्रह की असत् कल्पना से ही पीड़ित हैं। अगर हम सत्याग्रह की परिशुद्ध कल्पना करें, तो कहना पड़ेगा कि लोकशाही में उसे एक विशेष स्थान है। उसका दूसरी शाहियों में जितना स्थान हो सकता है, उससे अधिक स्थान लोकशाही में है। किन्तु लोकशाही में उसका अर्थ एकांगी नहीं, व्यापक ही बन सकता है। अगर हम लोकतन्त्र में सत्याग्रह को व्यापक बना सके, तो उसमें भी वही आपत्ति आयेगी—जहाँ संख्या बढ़ाने की बात आयेगी, वहाँ गुण घटेगा। जहाँ गुण बढ़ाने की कोशिश होगी, वहाँ संख्या घटेगी।

वेदान्त की सही समझ

मैंने कहा था कि वेदान्त, विज्ञान और विश्वास ये तीन शक्तियाँ इस जमाने को चाहिए। वेदान्त का अर्थ है वेदों का अन्त याने खातमा। याने सभी कृत्रिम धर्मों का अन्त। वेद को उसका प्रतिनिधि मान लें, तो वेदान्त का अर्थ होता है—बाइबलान्त, पुराणान्त, कुराणान्त और जितनी पुस्तकें हैं उन सबका अन्त। इस तरह यह वेदान्त अत्यन्त व्यापक वस्तु हो जाती है। इसीलिए मैं मानता हूँ कि दुनिया को वेदान्त ही बचा सकता है। यदि मैं वेदान्त का अर्थ उपनिषद् वगैरह कहूँ, तो फौरन एकदेशीयपन आ जायगा, इसलिए वह संकुचित विचार नहीं मानता। मनुष्य को मनुष्य से अलग करनेवाली, सभी कल्पनाओं का अन्त ही वेदान्त है। जब हम उसका ऐसा विशाल, व्यापक अर्थ करते हैं, तो निःसंशय ही वेदान्त से दुनिया का भला होगा।

धर्म को विशिष्ट व्यक्ति के साथ जोड़ना गलत

विवेकानन्द ने अमेरिका की धर्म-परिषद् में जो गर्जना की थी, वह यही है। वेदान्त में हम किसी एक पुरुष के

साथ बँधे हुए नहीं हैं, जैसे ईसाइयत ईसा के व्यक्तित्व के साथ बँधी है या जैसे कुछ कम मात्रा में सही, मुहम्मद के साथ इस्लाम की विचारसरणी किंवा गौतम के साथ बौद्ध धर्म की विचारसरणी जुड़ी दीख पड़ती है। 'दीख पड़ती है' यह मैं जानबूझकर कह रहा हूँ। वास्तव में वह नहीं है, दीख ही पड़ती है।

बुद्ध ने यह कहीं नहीं कहा है कि 'मेरे वचनों के अनुसार ही आपको चलना चाहिए और उसी तरह से विचार करना चाहिए।' मुहम्मद ने भी यह कभी नहीं कहा। उसने तो बार-बार यही दोहराया कि 'मैं परमेश्वर नहीं हूँ, परमेश्वर की जगह मैं नहीं बैठ सकता। मैं मर्त्य हूँ, मनुष्य हूँ।' लेकिन उसके कई ऐसे साथी निकले, जिन्होंने उसे 'परमेश्वर' कहा। जहाँ गुण का प्रकाशन ज्यादा होता है, वहाँ मनुष्य की आँखें चौंधिया जाती हैं। इसलिए उनके बार-बार परमेश्वर होने से इन्कार करने के बावजूद लोग उन्हें परमेश्वर मानते थे। वे मर गये, तो वह बात फैली; लेकिन लोगों ने नहीं माना। यही समझ लिया कि वे मर नहीं सकते। यह बिल्कुल अफवाह है, गलतफहमी है। आखिर अबुबकर, जो उसका शिष्य था और सर्वथा सत्यवादी के तौर पर प्रसिद्ध था, एक मसजिद पर चढ़ा और वहाँ से उसने जाहिर किया कि 'मुहम्मद एक आदमी था और वह मर गया।' तब एकत्रित लोगों ने माना कि यह बात सही है।

मुहम्मद ने यह कभी नहीं कहा कि मैं अल्लाह की जगह ले सकता हूँ और मेरे साथ परिपूर्ण सत्य जुड़ गया है।' उन्होंने यही कहा है कि 'पहले के रसूलों ने जो कहा, वही मैं आपके सामने कह रहा हूँ।' किंतु 'महमदुर्रसुल उल्लाह' यह लोगों ने जोड़ दिया। अल्ला का रसूल है, ऐसा अर्थ मुसलमानों ने माना। लेकिन मुहम्मद ने जो कहा, उसका अर्थ यही है कि मुहम्मद उसका रसूल मात्र है, सेवक मात्र है। अल्लाह नहीं, उसका पैगाम पहुँचानेवाला रसूल है। लेकिन आज उसका अर्थ मुहम्मद ही रसूल है, ऐसा किया जाता है, जो गलत अर्थ है। बल्कि इससे उल्टा अर्थ कुरान में लिखा है। अल्ला मियाँ पैगंबर से बोल रहे हैं कि उसे तो मैंने पैगाम दिया, अरबों के लिए अरबी जबान में बोलने के लिए। तू बोलेगा, यूँ समझकर मैंने तुझे पैगाम दिया है। मैंने हरएक काम के लिए रसूल भेजे हैं। उन्होंने कुछ रसूलों के नाम भी दिये हैं और कहा है कि 'कुछ रसूलों के नाम तू जानता है और कुछ रसूलों के नाम तू नहीं जानता है।' फिर मुसलमानों के लिए इकरार करना पड़ता है। यह बोलना पड़ता है : ला नु फ़रिक़ु बैन अहदिम् भिर् रुसुलिह याने हम कोई रसूलों में फर्क नहीं करते। यह आज ही सुबह मैं दरगा शरीफ में बोल आया हूँ। इसका अर्थ अत्यन्त व्यापक है। फिर भी मुहम्मद के साथ यह चीज जुड़ जाने से एकांगिता आ जाती है।

परमेश्वर एक है, यह तो ठीक है; लेकिन विभिन्न रूपों में उसकी उपासना नहीं हो सकती, यह बात भी उसके साथ जुड़ गयी है। वेद ने कहा है : 'एकं सत्' याने सत्य एक है। बिल्कुल ठीक वही बात, जो पैगम्बर ने कही है। लेकिन विप्र, ज्ञानी, उपासक उसकी भिन्न-भिन्न उपासना करते हैं : 'विप्रा : बहुधा वदंति' मतलब यह कि उस एक उपासना में अनेक विध उपासनाएँ समायी हुई हैं। फिर भी इस्लाम यह नहीं मानता। इसलिए आप यही कहेंगे, सत्य एक है और मूर्ख उसे बहुविध कहते हैं : 'एकं सत् मूर्खा : बहुधा वदंति' तो आप एकांगी विचार करते हैं, यही माना जायगा। इसका अर्थ होगा कि वह एकता बहुविधता को समा नहीं सकती, सहन नहीं कर सकती। एकांगी भी हो जाती है। किन्तु यदि आप यह कहें कि 'सत्य एक ही है और ज्ञानी लोग भिन्न-भिन्न रूप में उसको पूजा करते हैं', तो तत्काल आप व्यापक विचार करनेवाले माने जायँगे। फिर गुण और संख्या का विरोध भी क्यों आयेगा? लेकिन आज तो आता ही है।

हमारा दुहरा कार्यक्रम

हमारे सामने एक समस्या है : 'ग्रामदानी गाँवों की संख्या बढ़ाते चले जाने से कुछ ग्रामदानी गाँव बोगस भी हो जाते हैं।' मुझसे किसी ने पूछा भी था कि 'क्या ऐसा नहीं होता?' इस पर मुझे जो उपमा सूझी, वह तो मैंने कह ही दी : 'शिवाजी ने पचास किले कमाये, पर बीस गँवा दिये और तीस हाथ में रह गये।' फिर भी यह निरुत्तर उत्तर है। वह चुप हो गया, पर मैं जानता हूँ कि इस उत्तर से समाधान नहीं हो सकता। इसलिए यह सही है कि इस पर हमें चिन्तन करना चाहिए। हमारे ग्रामदानी गाँव ढीले पड़ते हैं, इसका कारण कुछ भी हो। फिर भी आप ही ने उन्हें बनाया है और आप ही कहते हैं कि 'वे कच्चे हैं', तो जाइये पक्के बनाइये। खूँटा जरा ढीला हो गया, तो पक्का बनाइये। परिस्थिति ने उसे ढीला बना दिया, तो क्या आप उसे उठाकर फेंक देंगे? तब फिर आपकी चक्की कैसे चलेगी? इसलिए आप ही खूँटे को पक्का बनाइये। अगर वह पक्का नहीं बनता, पक्का बनाने में टूट जाता है, तो अलग बात है। लेकिन उसको पक्का बनाने की कोशिश तो करनी ही चाहिए। इसलिए स्पष्ट है कि हम लोगों में जो यह विचार चलता है कि हम थोड़े-थोड़े ग्राम-दान हासिल कर वही मजबूत काम करें। उसका परिणाम तो अच्छा होगा, पर उससे व्यापकता न आयेगी।

दूसरा विचार यह चलता है कि 'चन्द ग्राम-दान हासिल करोगे, तो तुम पर जिम्मेवारी आयेगी।' मैं कहता हूँ कि जितने ज्यादा ग्राम-दान हासिल होंगे, उतनी समाज पर जिम्मेवारी आयेगी, तुम्हारी जिम्मेवारी न रहेगी। उस हालत में विचार व्यापक बनेगा और लोगों को विविध प्रयोग करने होंगे। अगर हम इसकी व्यक्तिगत जिम्मेवारी लेते हैं, तो क्या कदाचित् हमारे नालायक साबित होने, नाकामयाब होने पर ग्राम-दान का विचार ही नालायक, नाकामयाब सिद्ध हो जायगा? मान लो, किसी एक जगह विनोबा बैठा और उसने कुछ काम किया, तो लोग कहेंगे कि वहाँ विनोबा जैसा व्यक्ति बैठा है, इसीलिए कुछ काम हुआ है, नहीं तो नहीं होता। याने अगर हम यशस्वी हुए तो हार गये और हार गये तो मर गये। जैसे आधुनिक लड़ाई में होता है। जो जीता सो हारा और जो हारा सो मरा।

एक भाई ने मुझे कहा कि आप काफी घूम चुके, अब एक जगह बैठकर कुछ काम करो। इस पर मैंने उसे वेद मन्त्र सुनाते हुए यह समझाया कि सबका सृजन करनेवाला परमेश्वर है। वही सब कर लेगा। उसके काम में दखल देने की जिम्मेवारी मेरी नहीं है। कार्लमार्क्स ने समाज के सामने जो कुछ रखा, उस समय उसे किसी ने नहीं कहा कि तुम कुछ करके दिखाओ। फिर मेरे पर कुछ करके दिखाने की जिम्मेवारी कहाँ से आगई? इसलिए ये दो विचार चलते हैं, वे एक-दूसरे को काटनेवाले हैं। इनसे सारा विचार ही संकुचित, कुंठित हो जायगा। दोनों मिलकर एक ही विचार है। कुछ ग्राम-दान मजबूत बनाये जायँ और साथ ही नये-नये ग्राम-दान हासिल भी किये जायँ। ग्राम-दान के लिए हवा भी खूब बनायी जाय, प्रचार भी खूब किया जाय।

संख्या की वृद्धि से हम डरें नहीं। संख्या वृद्धि के साथ-साथ गुणवृद्धि होना भी लाजिमी है। ऐसी व्यापकता के साथ हम काम करेंगे, तो हमारी ताकत बढ़ेगी। मैं इस विचार को बहुत महत्त्व दे रहा हूँ। हमारे कार्यकर्ताओं के मन में दुविधा ही नहीं, त्रिविधा और चौविधा भी प्रगट हो सकती है—याने हम यह करें या वह करें, ऐसा वे सोच सकते हैं। लेकिन पहले हमें यही समझना चाहिए कि हम ही करनेवाले कौन होते हैं? सर्वोदय-पात्र कहेगा: 'हम याने कुल हिन्दुस्तान हैं।' फिर हरएक से जितना बन सके, उतना वह करे, वह हमारा ही काम माना जायगा।

'समरथ को नहिं दोष गुसाईं'

आज सुशीला बहन (नायर) से बातें हो रही थीं। वह गांधीजी के पास रही है, इस बात का हम पर बहुत असर है। वह कहती थी कि 'ग्वालियर के नजदीक डाकुओं का मुल्क है। जी चाहता है कि वहाँ शांति-सेना का काम करूँ। वह काम अगर आपके शांति-सेना के नियमों में बैठता हो, तभी कर सकूँगी। आप आशीर्वाद दीजिये।' मैंने उससे कहा: 'शांति-सेना का काम करने के लिए उसके प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं। यह मैं खुलेआम जाहिर करना चाहता हूँ। फिर भी मेरा प्रतीज्ञा-पत्र हासिल करने का यह नाटक जारी रहेगा। शांति-सेना का काम जिसे सूझे, वह करे। जिसके दिल में उसके लिए तीव्रता होगी, वह यह काम करेगा ही। मैं जानता हूँ कि मनुष्य की कुछ मर्यादा होती है। ऐसे मनुष्य के लिए वे नियम लागू नहीं होते। हमारे शास्त्र में कहा है कि जो तेजस्वी होगा, उसे दोष लागू नहीं होगा। तुलसीदास ने भी यही लिखा है: 'समरथ को नहिं दोष गुसांई।' अगर सुशीला वहाँ जाकर काम करे और कामयाब हो, तो अच्छा ही है। वह वहाँ जायगी, तो दो चीजें होंगी। उस कार्य से उसका जीवन सफल होगा या उसी कार्य में वह कतल हो जायगी। इसलिए नियमों में न बैठ सके, तो भी समय पर काम कर सकते हैं। मैं व्यापक बनना चाहता हूँ और व्यापक ही हूँ।

मुझसे कुछ लोग अजीब-अजीब सवाल पूछते हैं। अभी राजस्थान में ही एक भाई ने पूछा कि क्या हम बीड़ी पीनेवाले भी शांति-सैनिक हो सकते हैं? इस पर मैंने उससे पूछा क्या प्रतिज्ञा-पत्र में ऐसा लिखा है कि बीड़ी नहीं पीनी चाहिए?' उस भाई ने कहा: 'ऐसा नहीं लिखा है।' मैंने कहा: 'फिर समझ लो कि ऐसा नहीं है। मैं प्रतिज्ञा में ऐसी कैद रखता, तो खतम ही हो जाता। उसमें न बीड़ी पीने का निषेध लिखा है और न खादी पहनने तथा सूत कातने का विधान। कुछ है ही नहीं। संकुचित बनने का साहस ही नहीं कर सकता। मैं तो समझता हूँ कि वह Safety-valve है। उससे बचाव हो सकता है।

अब आगे का विचार कीजिये। इस तरह स्पष्ट है कि मैंने आग्रह छोड़ दिया है। मैंने कहा कि सत्याग्रह का अर्थ यही है कि 'सत्य को ही आग्रह करने दीजिये, आप सत्य का आग्रह नहीं, पालन कीजिये।' अगर आप समझते हैं कि हमारा आग्रह ठीक है, और सामनेवाला भी आग्रह रखता है, तो एक आग्रही मन के खिलाफ दूसरा आग्रही मन खड़ा हो जायगा और दो मनों की टक्कर होगी। फिर विज्ञान-युग के लिए वह सत्याग्रह का स्वरूप नहीं होगा। विज्ञान-युग में तो मन से ऊपर उठना और मन की टक्करों को टालनी पड़ती हैं। इस युग में सज्जनों के मनों की विरोधी टक्करें नहीं होने देनी चाहिए। इसलिए अगर कोई भी सज्जन आकर मुझसे कहता है कि 'तुम्हारा विचार संकुचित होता है, तो मैं उससे यही कहूँगा कि 'तुम्हारे लिए मैंने उसे खोल दिया है। मैं सज्जन के विरोध में खड़ा नहीं हो सकता। यह मैं जानता हूँ कि सामनेवाला सज्जन है और वह भी जानता है कि मैं सज्जन हूँ। इस तरह दोनों एक-दूसरे को जानते हैं, तो संकुचितता न होनी चाहिए।' मेरी हमेशा यही कोशिश रहती है। इसलिए संकुचितता छोड़कर परिणाम देखना चाहिए। सही विचार मालूम करना चाहिए और मन में किसी तरह का आग्रह नहीं रखना चाहिए।

इस पर कल से ही लोग पूछने लग गये कि 'फिर तो जो चुनाव में खड़ा होगा, क्या वह शांति-सैनिक बन सकता है?' मैंने गोकुलभाई से कहा कि 'आप ही इस बारे में बताइये। उन्होंने फैसला दिया 'जो चुनाव में खड़ा होगा, वह शान्ति-सैनिक नहीं बन सकता है।' अगर वे दूसरा फैसला देते, तो भी मैं सोचता। अगर कोई यह कहता कि 'मानी हुई बात है कि चुनाव में राग, द्वेष हुआ करते हैं, फिर भी कोई उनसे सर्वथा अलग रहकर परिपूर्ण, शांत और तटस्थ मन से चुनाव में खड़ा होना चाहे, तो क्या हर्ज है?' तो मैं भी कहता, 'हाँ, भाई! कोई हर्ज नहीं।' इसलिए मेरा भरोसा मत कीजिये। मैं कुछ भी कह सकता हूँ। बड़ी मजेदार बात है। गुजरात में मैंने 'शांति-सेना' और 'शांति-सहायक' के लिए कभी कुछ कहा, तो कभी कुछ। एक दिन एक भाई के सवाल का जवाब मैं दे रहा था, तो नारायण ने मुझसे कहा कि परसों तो आप इससे भिन्न बात करते थे। 'बात यह है कि मैं जो बातें रखता या कहता हूँ, वे मुझे बाद में याद भी नहीं रहती। आग्रह के लिए याद तो रखना पड़ता है। इसी लिए आखिर में मैंने नारायण से ही पूछने का रिवाज रखा कि क्यों नारायण मैंने क्या कहा था?'

हम जितने व्यापक बन सकते हैं, उतने व्यापक बनें और सबको एक करें। हम सब सज्जनों को एक करना चाहते हैं, यही हमारी दृष्टि है। किन्तु उस दृष्टि में भी हमने अंकुश तो रखा ही है, क्योंकि हम जानते हैं कि बिना अंकुश के और काम हो सकता है। किन्तु शांति-सेना का काम नहीं हो सकता। सिर फूटेंगे, पर सफलता नहीं मिलेगी। फिर सिर फुड़वाना ही हमारा लक्ष्य हो, तो अलग बात है। अतः हमें सफलता का इन्तजाम करके ही सिर फुड़वाना चाहिए। अगर ऐसा नहीं करते, तो वह हमारी मूर्खता ही साबित होगी।

पक्षातीत भूमिका बिना शान्ति कार्य कठिन

रविशंकर महाराज की बात है। वे हमारे साथ चार-पाँच महीने रहे हैं। उन्होंने मुझे आकर कहा कि 'उनके विचारों के जो दोष थे, वे दूर हो गये हैं।' मैंने भी उनके साथ रहकर अपने विचारों में जो दोष थे, वे दुरुस्त कर लिये। किन्तु यह बात मैंने उनके सामने नहीं कही, अब कह रहा हूँ। उनके अनुभव की बात है, अहमदाबाद में महागुजरात के प्रश्न पर दंगा हुआ और कुछ गोलियाँ भी चलीं, यह आप जानते ही हैं। उस समय महाराज ने कहा था: 'जिनके हाथ में दंड-शक्ति है, उन्हें गोली चलानी पड़ी, इसमें उतना हर्ज नहीं है। किन्तु जब काग्रेस आफिस से गोली चली, तो मेरे मन में यह विचार आया कि कांग्रेस आफिस गोली चलाने की जगह नहीं है। वह तो मरने की जगह है, मारने की नहीं। इसलिए मेरा दिल बगावत करता है।' उनसे मिलने के लिए कांग्रेस के कुछ भाई गये थे। अहमदाबाद से चालिस-पचास मील दूर महाराज भूदान के प्रचार के काम में थे। उन्होंने महाराज से कहा कि 'अगर आप अहमदाबाद आयें, तो शान्ति का प्रचार कर सकते हैं। लोग भी आपकी बात मानेंगे।' महाराज ने कहा कि 'मैं आने को राजी हूँ, जरा प्रयत्न करना होगा। किन्तु कहाँ तक वह सफल होगा, नहीं

कह सकता। लेकिन मैं उसके साथ यह भी कहूँगा कि कांग्रेस आफिस से गोली नहीं चलनी चाहिए। उसके बाद उन्हें वहाँ बुलाने के लिए आग्रह नहीं हुआ।

मैं कह यह रहा था कि हम खूब व्यापक बनना और सब के साथ सम्बन्ध रखना चाहते हैं। फिर भी महाराज अगर गोली-वाली बात पर लोगों के पूछने पर खामोश रहते, तो शांति-स्थापना में चाहे वे बहुत महान् हों, पर नाकामयाब ही होते। सिर फुड़वाना हो, तो अलग बात है। लेकिन सत्य बोलकर ही वे शांति की स्थापना कर सकते थे। निष्पक्ष होकर ही सत्य बोला जा सकता है। यदि कोई पूछे कि क्या पक्ष के अंदर रहकर सत्य नहीं बोला जा सकता? तो मैं यही कहूँगा कि बोलकर दिखाओ, मुझसे मत पूछो। मैं मानने को राजी हूँ। पक्षातीत कोई नहीं हो सकता है, ऐसा मैं नहीं कहता, लेकिन इन दिनों बहुत मुश्किल मामला है, क्योंकि पक्ष के साथ लड़ाई-झगड़े जुड़ ही जाते हैं। भले ही वे पक्ष-मूलक झगड़े न हों, तो भी पक्ष बीच में आ जाता है और किसी-न-किसी तरह से वे पक्ष के मामले बन जाते हैं। उस हालत में जो भी और जिस किसी पक्ष से हुआ हो, वहाँ जाकर जो यह बोलने की हिम्मत करेगा कि अमुक काम गलत हुआ है, वह पक्ष में रहकर भी पक्षातीत ही बन जायगा। महाराज तो किसी पक्ष में नहीं हैं, इसलिए वे तो पक्षमुक्त हैं।

आज हम सब भेद मिटा रहे हैं

हमने जो कुछ मर्यादाएँ बनायी हैं, वे संकुचित नहीं, कारगर बनने के लिए ही बनायी हैं। शांति-सेना के काम में हम सफल होने के लिए हमें जो मर्यादाएँ जरूरी मालूम पड़ीं, उन्हें हमने रखा। लेकिन मान लीजिये कि उन मर्यादाओं से कुछ सज्जनों को, जो इसमें आने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं, बाधा पड़ रही हो, तो उन्हें हटाने के लिए हम राजी हैं, यही मानकर कि यहाँ इससे थोड़ी संकुचितता आ सकती है। उसे संकोच को छोड़ें, तो गुण और संख्या में विरोध नहीं होगा। आज के मेरे व्याख्यान का यही मुख्य विचार है।

अपने कार्यकर्ताओं से हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि इस कार्य के जिस किसी अंग में, जिस अंग में उनको श्रद्धा और विश्वास हो, वे लगे रहें। मान लीजिये, सर्वोदय-पात्र का काम करना चाहिए, ऐसा बाबा ने कहा है, तो कोई जरूरी नहीं है कि आप वही करें। अगर वे जमीन के बँटवारे का काम करने की जिम्मेवारी महसूस करते हों, तो उसी में लगे रहें। इस व्यासपीठ (प्लेटफार्म) से किसी को संकुचित करनेवाला कोई भी आदेश नहीं मिलेगा। मुझसे तो और भी नहीं मिलेगा, क्योंकि मेरे विचार में तो वह चीज है ही नहीं। इसलिए कई लोग मुझसे पूछते हैं कि ऐसी हालत में शांति-सेना कैसे बनेगी? तो मैं कहता हूँ, 'देखिये, कैसे बनेगी। प्रयोग करके देखने की बात है।' मैं चाहता हूँ कि हमारे किसी भी विचार को बाधा न पहुँचाते हुए काम व्यापक बने। मेरी श्रद्धा है कि इस तरह किसी भी विचार को बाधा न पहुँचायेंगे, तभी काम व्यापक बनेगा। फिर गुण और व्यापकता में कोई विरोध आयेगा, ऐसा मैं नहीं मानता।

◆◆◆

खादी ग्रामोद्योग बोर्ड की सभा में :-

सर्वोदयनगर, (अजमेर) २७-२-'५९

गाँवों के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने के लिए खादी को मदद नहीं, संरक्षण देना होगा!

खादी के विषय में दिलचस्पी रखनेवालों के समक्ष बोलने का अवसर मुझे मिला है, शायद इस प्रकार की यह पहली गोष्ठी है, जहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर काम करनेवाले विभिन्न संस्थाओं के कार्यकर्ता एकत्रित हुए हैं। आप लोगों में से कुछ लोगों को मैं जानता हूँ, कुछ को नहीं जानता! आप की इस जमात के साथ मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध रहा है।

सही दिशा या उल्टी दिशा

सन् १९१६ की बात है, मैंने अनेकों कार्य किये थे, उनमें से एक कार्य निवार बुनने का था। दिनभर में २५ गज निवार से जीवन निर्वाह हो सकेगा, ऐसा सोचकर उन दिनों काफी जोरों से निवार बुनने का काम चलता था। सतत परिश्रम के बावजूद भी आठ घंटों में २५ गज निवार नहीं बुनी जा सकी, तब भी मैं उस काम में लगा रहा। आखिर दस घंटों में पच्चीस गज निवार बुनने की क्षमता हासिल हुई। उन दिनों सारा सूत मिल का होता था।

उसके बाद मिल के सूत से हिन्दुस्तान को खास कोई लाभ नहीं होगा, ऐसा ध्यान में आया। इसी से धीरे-धीरे इस चर्खे की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। हम लोग बैठकर कातने लगे। फिर बाद में धुनने की प्रक्रिया शुरू हुई। उसके बाद तुनाई का काम सूझा। फिर खेती और अब हम लोग भू-दान, ग्राम-दान के काम तक पहुँच गये हैं। आप देखेंगे तो ध्यान में आयेगा कि यह बिल्कुल विपरीत प्रक्रिया है। बुनने से प्रारम्भ कर मैं समग्र ग्राम दृष्टि तक पहुँचा। संशोधन के काम में पीछे-पीछे जाना पड़ता है। चिंतन की जो प्रक्रिया होती है, उससे यह भिन्न प्रक्रिया है। इस तरह पिछले इन ४५ वर्षों से कताई, बुनाई, धुनाई आदि कार्यों के साथ मेरा अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रहा है। मेरी जवानी के दिन इन्हीं सब कामों के संशोधन में बीते हैं। जिन दिनों कताई की मजदूरी निर्धारित करने का प्रश्न उठा, उन दिनों मैंने चार-चार गुण्डियाँ प्रतिदिन कातना प्रारम्भ कर दिया था। घंटों बैठकर मैं जितना कातता और उससे जितनी आय होती, उसी से मैं अपना निर्वाह करता था। एक साल तक मैंने प्रयोग किया। एक दिन भी इस प्रयोग को खण्डित नहीं होने दिया। इस प्रकार मैंने कताई आदि कार्य करते समय अनेकों प्रयोग किये हैं, कराये हैं और किये जाते हुए देखे हैं। इस पर से खादी के प्रति रही हुई मेरी भावनाओं को आप समझ सकते हैं!

तीस वर्षों पूर्व एक व्याख्यान में मैंने कहा था कि खादी कपड़ा नहीं है, यह तो एक विचार है। खादी बहुत पुराने समय से व्यवहृत होती रही है। पहले सभी लोग खादी ही पहनते थे। वह जो खादी थी, वह लाचारी की खादी थी। उस समय खादी नहीं पहनते, तो नंगे रहना पड़ता। इसके सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं था। लेकिन अब जो खादी आयी है, वह लाचारी की खादी नहीं है, नये विचारों की अभिव्यक्ति है। इसलिए इसका उतना ही शानदार प्रचार होनेवाला है, जितना कि आज के जमाने में कई व्यसनों का प्रचार हुआ है। खादी

की पृष्ठभूमि में जो मूलभूत विचार हैं, वे लोगों के ध्यान में आते ही खादी घर-घर तैयार होगी. इसमें कोई संदेह नहीं है।

ईसा का स्वप्न साकार कैसे होगा ?

हमने तकली पर भी प्रयोग किये हैं। हमें छोटे-बड़े या जैसे भी औजार उपलब्ध हों, उनका प्रयोग करना चाहिये। भगवान ने हमें छोटा-सा मुँह दिया और लंबे-लंबे दो हाथ दिये हैं। ऐसी स्थिति में आजीविका उपार्जन करना कठिन नहीं होना चाहिये! जो औजार मिले, उनका उपयोग करें, इसका यह अर्थ नही कि हम औजारों में संशोधन करना नहीं चाहते। मैं औजारों में हरदम सुधार करने का आग्रह रखता हूँ। इसीलिए मैंने कई बार कहा है कि सर्वोदय विज्ञान का प्रेम से स्वागत करता है। अगर विज्ञान सर्वोदय और अहिंसा के साथ आए, तो संसार में स्वर्ग की स्थापना हो सकती है। ईसामसीह का स्वप्न था कि तेरा (ईश्वर का) राज जो आसमान में है, वह नीचे जमीन पर आये। विज्ञान और अहिंसा के समन्वय से ही हम वह सपना साकार कर सकते हैं। अन्यथा विज्ञान का हिंसा के साथ गठबन्धन होगा, तो मानव-जाति का सर्वनाश हो जायगा।

खादी के काम का मतलब पुराने औजारों से कातते रहना नहीं, बल्कि नये-नये औजारों का आविष्कार करना है। इसी दृष्टि से जब अम्बर चर्खा आया, तो मैंने उसका स्वागत किया। हमारा आशय यह कत्तई नहीं है कि हम नाहक समय खर्च करना चाहते हैं, दकियानूस बने रहना चाहते हैं या वैसे औजार, जो इस जमाने में टिक नहीं सकते, बनाये रखना चाहते हैं। औजारों में उत्तरोत्तर सुधार होते जायँ, यही हम चाहते हैं। मैं तो इस बात की राह देख रहा हूँ कि कब अणु-शक्ति आए और गाँव-गाँव में पहुँचे। गाँव-गाँव में पहुँचानेवाली अणु-शक्ति विकेन्द्रित ही होगी। उससे ग्राम-स्वराज्य लाने में मदद मिलेगी। इसलिए अणु-शक्ति के पीछे मेरी एक ही शर्त है कि उसका लाभ व्यक्ति विशेष को न मिलकर, सारे गाँव को मिले। कोई एक व्यक्ति सारे गाँव का शोषण न करे और न एक गाँव ही दूसरे गाँव का शोषण करे।

गाँव और शहर की सीमाएँ

हमारे छोटे-छोटे गाँव आर्गेनाइज्ड हो जायँ और हमारे शहर थोड़े रूरलाइज्ड हो जायँ। यानी अब हमें, हमारे गाँवों को थोड़ा-सा बड़ा बनाना होगा और शहरों के संबंध में कुछ मर्यादाएँ निर्धारित करनी होंगी, ताकि शहर अमुक मात्रा से अधिक बड़े न बन जायँ। बहुत बड़े ग्राम बन जाने से एक-एक गाँव की खेती दो-दो, तीन-तीन मील दूर रह जायगी। उस हालत में खेती की देख-रेख करना बहुत कठिन हो जायगा। मैंने देखा है कि बड़े गाँवों की खेती उतनी अच्छी नहीं होती, जितनी कि छोटे गाँवों की खेती अच्छी होती है। घर के नजदीक खेत होने के कारण किसान उसकी देख-रेख भली-भाँति कर सकता है। खेतों की सुरक्षा के लिए जहाँ दो-दो मील जाना-आना पड़ेगा, वहाँ जाने-आने में ही कितना समय चला जायगा ? यह अमेरिका नहीं है, जो हम मोटर द्वारा खेतों पर जायँ! मोटरों के लिए इतने रास्ते बनाना भी अपने देश में शक्य नहीं है। यहाँ धीरे-धीरे या तो हवाई-जहाज ही चलेगा या पाँव चलेगा। तीसरा कोई साधन नहीं चल सकेगा। आज जिस तरह जन-संख्या बढ़ रही है, वह अगर इसी तरह बढ़ती ही चली जायगी, तो औसत आदमी पर जमीन और भी कम पड़ेगी। फिर यह सवाल उठने ही वाला है कि रेल्वे लाइनें इतनी जमीन लेती हैं, वह कहाँ तक उचित है ? मोटरों के लिए इतनी जमीन का दुरुपयोग क्यों किया जाय ? सारी जमीन उत्पादन के काम में क्यों न ली जाय ?

जैसे-जैसे विज्ञान की तरक्की होती है, वैसे-वैसे दो ही चीजें टिकेंगी—यह सिद्ध होनेवाला है। एक तो अपनी निज की इन्द्रियाँ, जिसे हम करण कहते हैं, टिकेंगी। उनका महत्त्व कभी कम होनेवाला नहीं है। क्या कभी आँख की कीमत कम होगी ? कितनी भी समाज-व्यवस्था परिवर्तित हो जाय या विज्ञान की तरक्की हो जाय, लेकिन पाँव का मूल्य घटनेवाला नहीं है। आँख की महिमा घटनेवाली नहीं है, लेकिन जहाँ दूरबीन और खुर्दबीन का इस्तेमाल करते हैं, वहाँ जो सर्वोत्तम दूरबीन होगी, वही काम में आयेगी। इस तरह उपकरणों में सर्वश्रेष्ठ उपकरण टिकता है, अन्यथा करण ही टिकता है। याने पाँव टिकता है या हवाई जहाज ही टिकता है। इसलिए खादी के औजारों में सुधार हो, इसके मैं विरुद्ध नहीं हूँ। मैं चाहता हूँ कि सर्वश्रेष्ठ औजारों से खादी का उत्पादन बढ़ाया जाय। पर जहाँ जो खादी पैदा हो, वहीं उसकी खपत भी हो, इस ओर भी हमारा ध्यान रहना चाहिए।

मदद और संरक्षण का भेद

आज सरकार खादी को, ग्रामोद्योगों को मदद दे रही है, किन्तु उसे संरक्षण देने को तैयार नहीं है। मदद और संरक्षण में फर्क बहुत स्पष्ट है। मैं सरकार को दोष देने के लिए नहीं बोल रहा हूँ, किन्तु यह साफ जाहिर है कि सरकार खादी को संरक्षण देने के लिए राजी नहीं है। वह उसे मात्र मदद देना चाहती है। लेकिन अब खादी का काम मदद से आगे बढ़नेवाला नहीं है। आप थोड़ी-सी मदद देकर खादी को सस्ता बनायेंगे, तब भी वह मिल की होड़ में सस्ती नहीं बन सकती। यह बिल्कुल सिद्ध वस्तु है। इसलिए यही समझना चाहिए कि जब तक मदद मिलती रहेगी, तब तक खादी चलेगी, अन्यथा नहीं चलेगी। सरकार मदद देती है, उसका लाभ उठाकर अगर हम जनता में संकल्प-शक्ति पैदा करें, तो संकल्प-शक्ति से खादी टिक सकती है। अब यदि सरकार की ओर से मिलनेवाली मदद का हमने ठीक तरह से लाभ नहीं उठाया, तो वह मदद मरनेवाले रोगी के लिए 'आक्सीजन' जैसी पूर्व-क्रिया सिद्ध होगी। हमें चाहिए कि हम खादी को उसके पाँवों पर खड़ा कर दें। अम्बर चर्खे से इस काम में बहुत अनुकूलता मिल गई है। अम्बर चर्खे का उपयोग करके अब गाँव-गाँव स्वावलंबी हो सकते हैं। थोड़ी-सी कोशिश करके आप इसका प्रत्यक्ष रूप देख सकते हैं। दो स्थानों पर लोगों ने इसका कुछ नमूना तो देखा है।

एक तो हैदराबाद में पन्द्रह सौ चरखों पर उन मुसलमान बहनों के सामूहिक कताई को, जो अक्सर पर्दे से बाहर नहीं आतीं। देहात में तो चर्खे चल ही सकते हैं, पर हैदराबाद जैसे शहर में इतनी बेकारी और आवश्यकता पैदा हो गयी कि पन्द्रह सौ बहनों ने कताई कौशल प्रदर्शित किया। वह कितना अद्भुत दृश्य रहा होगा। जिन्होंने उस दृश्य को देखा, उन्होंने मुझे बताया। उस घटना से आप चर्खे की सम्भावनाएँ समझ सकते हैं। एक चीज तो वहाँ देखने को मिली, दूसरी चीज आज दरभंगा जिले में हो रही है। दरभंगा जिले का काम तो कभी मैंने भी देखा है। यह मैं जानता हूँ कि वहाँ आज जो काम हो रहा है, उसका बीज उसी समय दीख रहा था। दरभंगा जिले के गाँव-गाँव में लोग यह संकल्प करते हैं कि हमारा गाँव हम स्वावलम्बी

बनायेंगे। हम हमारे ही गाँव का कपड़ा इस्तेमाल करेंगे। अम्बर चर्खे के जरिये अपना स्वावलम्बन करके जो खादी बच जायगी, वह बाहर निर्यात कर दी जायगी, ऐसा वे सोचते हैं, परन्तु वहाँ मुख्य दृष्टि ग्राम-स्वावलम्बन की ही है। ग्राम-स्वावलम्बन ही मुख्य दृष्टि न रही, तो इस खादी के काम से भी बहुत बड़ा संकट उत्पन्न हो सकता है। इसलिए खादी के काम को मोड़ देने की अत्यन्त आवश्यकता पैदा हो गयी है और अब इस तरह का मोड़ देकर खादी के जरिये गाँवों के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त किया जा सकता है।

शिक्षा और बेकारी का गठबन्धन

खादी, खेती, ग्रामोद्योग और नयी तालीम का एक-दूसरे से निकट सम्बन्ध है। उनको एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। ये चीजें टिकेंगी, तो एक साथ टिकेंगी और गिरेंगी भी तो एक साथ गिरेंगी। एक टिकेगी और गिरेगी ऐसा होनेवाला नहीं है। आज यह कितनी हास्यास्पद बात है कि शिक्षा का सम्बन्ध सरकार बेकारी निवारण के साथ जोड़ रही है। जो शिक्षा स्वयं बेकारी उत्पन्न करती है, वह अच्छी शिक्षा कैसे हो सकती है? आंध्र में कुछ ग्राम-दान हुए हैं। वहाँ से मेरे पास एक पत्र आया है। उसमें लिखा है कि ग्रामदानी गाँवों में स्कूल के वास्ते हम इन्तजाम कर सकते हैं। हम यानी सरकार, इन्तजाम कर सकती है। क्योंकि शिक्षित-बेकारी निवारण में उनको कुछ शिक्षकों का इन्तजाम करना है। शिक्षित-बेकारी निवारण, याने शिक्षण कार्य बेकारी निवारण की दृष्टि से देखा जा रहा है। वैसे देखा जाय, तो आखिर हर्ज क्या है? मान लो, हिन्दुस्तान में बड़ा भारी अकाल पड़े और आधे लोग मर जायँ, तो क्या यह बड़ा रिलीफ का काम नहीं होगा? क्योंकि वह बेकारी निवारण का एक प्रयोग हो गया। एक बार विनोद के तौर पर ही सही, लेकिन गम्भीरता पूर्वक मैंने 'क्लीनबम' की बात कही। अमेरिका में कुछ लोग क्लीनबम की शोध कर रहे थे। वह बम जहाँ डाला जायगा, वहीं नुकसान करेगा। दूसरे क्षेत्र का वातावरण उससे दूषित नहीं होगा। मैंने उस बम के बारे में यह सब सुनकर कहा था कि अवश्य ही वह बम क्लीन होगा। अगर वह यह करें कि जहाँ वह पड़े, वहाँ मनुष्य को जख्मी न करके, पूरा खतम ही करे, तो मैं कहूँगा कि भगवान कृष्ण के बाद भूमि का भार हटाने के लिए, यह दूसरा अवतार हो रहा है। शास्त्रों ने कहा है कि पृथ्वी का भार हरण करने के लिए भगवान ने अवतार धारण किया। यादव कुल का संहार कराया, पांडव कुल का कराया, कौरव कुल का कराया और फिर अपने शरीर का भी करवाकर चले गये। इस तरह संहार प्रक्रियात्मक जो भगवान का गौरव-गान गाया जाता है, उसी तरह मैं उस क्लीनबम की गुणगाथा गाने के लिए तैयार हूँ। वैसा बम किसी को जख्मी न करे, तो उससे लोग भले ही मरे, लेकिन बेकारी निवारण का काम तो हो ही जायगा। इस पर से मैं कहना चाहता हूँ कि इस तालीम के साथ खादी टिकनेवाली नहीं है या इस खादी के साथ यह तालीम टिकनेवाली नहीं है। ये दोनों एक दूसरे के साथ टिकनेवाली नहीं हैं।

खादी आदि कार्यों का आधार

अन्न, वस्त्र, मकानादि कुछ प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं, वे हर एक की पूरी होनी चाहिए। कच्चा माल गाँव में उपलब्ध है और पक्के माल की जरूरत है, वह गाँव में ही तैयार होना चाहिए। उसके लिए अगर आप पावर का उपयोग करना चाहते हैं, तो भी कीजिये। अन्दर शोषण न हो, बाहर शोषण न हो, तो पावर के उपयोग में मेरा कोई विरोध नहीं है। जहाँ जो चीज पैदा हुई है, वहीं उसका पक्का माल बनना चाहिए। खादी की योजना इस दृष्टी के अन्तर्गत तैयार हुई है। खादी के साथ अन्य उद्योग भी आते हैं। खादी, दूसरे उद्योग और तालीम ये तीन चीजें भी तब तक नहीं चल सकतीं, जब तक जमीन सबकी न हो जाय।

जमीन पर मालकी हक रखना पाप है। इस पाप से कोई छोटा शब्द मैं इस्तेमाल नहीं कर सकता। यह बात मैं आज ही नहीं कह रहा हूँ। साठ-पैंसठ वर्षों पूर्व एक निबन्ध लिखा गया है, उसका भी शीर्षक है 'जमीन की मालकियत महान् पाप है।' कुल-के-कुल धर्मशास्त्र भी मालकी हक के विरुद्ध हैं। अर्थशास्त्र भी इसके विरुद्ध है। आज का जो अर्थशास्त्र है, वह भी इस बात का विरोध कर रहा है। अभी मैं इसकी तफसील में नहीं जाना चाहता। जमीन बाँटी जाय या नहीं, यह मामूली विषय है। ग्राम-स्वराज्य की योजना करने के अलावा पैदावार कैसे बढ़ती है, उस विषय में बहस करने जैसी कोई बात नहीं है। जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए। सारे गाँववाले एक कुटुम्ब की तरह रहें, सारे हितों के बारे में एक कुटुम्ब की तरह ही चिन्तन करें, तभी भूदान, ग्रामोद्योग, खादी और नयी तालीम मिलकर ग्राम-स्वराज्य की योजना प्रस्तुत कर सकते हैं। इस दिशा में कार्य आरंभ हो चुका है। उस काम की प्रगति कम हो, तो भी मुझे परवाह नहीं। लेकिन मैं चाहता हूँ कि गाँव-गाँव स्वावलम्बी हो। खादी का काम ग्राम-स्वराज्य और ग्राम-संकल्प के आधार पर हो।

आज खादी के काम को सरकारी मदद मिल रही है। सरकारवाले मदद देते हैं, तो कोई बड़ा उपकार करते हैं, ऐसा मैं नहीं मानता। बेकारी हटाना सरकार का कर्तव्य है। वह सरकार न करे, तो सरकार अपने मूलभूत कर्तव्य से च्युत होती है। इसलिए बेकारी निवारण के खयाल से खादी को कोई मदद दे, तो वह उपकार नहीं है। मदद देते हुए भी सरकार इस तलाश में रहेगी कि बेकारी निवारण के साथ-साथ कोई ऐसा बेहतर तरीका हाथ लगे, जिससे मदद न देनी पड़े। अतः मैं आपसे नम्रता पूर्वक कहना चाहता हूँ कि खादी के काम को सरकारी मदद मिल रही है, आप सभी कार्यकर्ता काम कर रहे हैं, खादी बढ़ रही है, बिक रही है, फिर भी मुझे प्रसन्नता नहीं है, क्योंकि जिस दिशा में हम जाना चाहते हैं, उस दिशा में नहीं जा रहे हैं। व्यापारी खादी के रास्ते से हम दूर नहीं हो पा रहे हैं और न हम विचार की खादी को प्रोत्साहन दे पा रहे हैं। गांधीजी ने कहा था कि समग्र दृष्टि से खादी अपने विचार के साथ टिके। अगर विचार-पूर्वक नहीं टिक सकती है, तो भी कोई हर्ज नहीं है। १९४४ में बापू जेल से बाहर थे और मैं जेल के अन्दर था। तब यह बात खूब जोरों से चलती थी कि 'कातनेवाला ही खादी पहने और पहननेवाला कातें।' 'कातनेवाला समझ-बूझकर कातें।' इसका अर्थ व्यक्तिगत रूप से न लिया जाय। एक-एक क्षेत्र, एक-एक प्रदेश अपना स्वावलंबन करे। स्वावलम्बन के लिए ही कातें।

दो सुझाव

अगर सरकार खादी को संरक्षण देना नहीं चाहती, सिर्फ मदद देना ही अपनी मर्यादा मानती है, तो मैं सरकार के सामने दो सुझाव पेश करना चाहता हूँ। एक तो यह कि जैसे

हर नागरिक को पढ़ना-लिखना सिखाना सरकार अपना कर्तव्य मानती है, वैसे ही हर एक को सूत कातने में प्रवीण बनाना भी अपना मुख्य कर्तव्य माने। इंग्लैण्ड में हर मनुष्य को तैरना और नाव चलाना आना ही चाहिए। इंग्लैण्ड के चारो ओर समुद्रही समुद्र है, इस वास्ते वे इस काम को 'नेशनल डिफेन्स' मानते हैं। वैसे ही मैं कहता हूँ कि हिन्दुस्तान के नागरिकों के लिए कातने की कला जानना 'डिफेन्स मेजर' है।

मैंने यही बात एक बार पण्डितजी से कही थी। वे हँसते हुए कहने लगे कि सिखाने के बाद सब लोग क्या करेंगे? इसका क्या उपयोग होगा? मैंने कहा कि पढ़ना-लिखना सिखा देने से क्या उपयोग होता है? जिसको हम पढ़ना सिखाते हैं, वह कम-से-कम बीस किताबें पढ़ेगा ही, यह कहाँ गारन्टी है? हमने मान लिया कि पढ़ना-लिखना तालीम का अंग है, वैसे ही कताई कला भी एक बुनियादी चीज के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि सरकार बुनाई के उद्योग का राष्ट्रीयकरण करे। सरकार की तरफ से कम-से-कम बारह गज कपड़ा प्रति व्यक्ति को मुफ्त बुनवा दिया जाना चाहिए। यह एक राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार करें। अपने परिवार के लिए कोई काते तो उसके लिए हर मनुष्य के पीछे १२ गज सूत माना जाय। उस सूत को बुनवाने के लिए लगभग डेढ़ दो रुपया देना पड़ेगा। अगर सूत अच्छा रहा या अम्बर चर्खे का सूत रहा, जो कि उत्तरोत्तर सुधरेगा ही, तो औसत दो आने गज का खर्च होगा। दो आने गज के हिसाब से डेढ़ रुपया या अधिक-से-अधिक मानें तो प्रति मनुष्य के पीछे दो रुपया खर्च आयेगा। इस हिसाब को मुझसे भी ज्यादा आप लोग जानते हो।

अभी मेरे पास हिसाब नहीं है, लेकिन अखिल राष्ट्र को ध्यान में रखते हुए इतना कहा जा सकता है कि अगर सूत अच्छा रहा, तो हर मनुष्य के पीछे लगभग डेढ़ रुपया बुनाई खर्च आयेगा। ३६ करोड़ लोगों पर चौवन करोड़ रुपये खर्च होने से सारे देश के लिए एक अभूतपूर्व योजना बन जायगी। इस योजना को सफल बनाना बहुत कठिन काम नहीं है। यह सबसे सस्ती योजना है। इससे भारत अपना कुल का कुल कपड़ा तैयार कर सकता है। इतने से पैसे में इतना बड़ा अभिक्रम करना बहुत ही आसान है। एक-एक गाँव से हम कितना और किस तरह प्राप्त करें, यह बहुत कठिन नहीं है। मैं ये दो सुझाव सरकार के सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ। सरकार अपनी शक्ति और अपनी शक्यता समझकर इस काम को उठाये। अगर वह न उठाये, तो जनता का कर्तव्य हो जाता है कि खादी को संरक्षण देने के लिए इस काम को उठाले।

खादी ग्रामोद्योग आयोग से....!

अभी तक राजस्थान में डेढ़ सौ ग्राम-दान हुए हैं। गुजरात में भी सत्तर-पचहत्तर ग्राम-दान हुए हैं। मैं चाहता हूँ कि खादी ग्रामोद्योग आयोग को तुरन्त ग्रामदानी गाँवों में पहुँचना और उनका चार्ज ले लेना चाहिए। जहाँ ग्राम-दान नहीं हुआ है, लेकिन ग्राम-संकल्प के लिए लोग राजी हो गये हैं, ऐसा क्षेत्र बिहार में है। बिहार एक प्राणवान् प्रांत है, बिहार में एक विशेष शक्ति है। इसलिए ग्राम-संकल्पी गाँवों में पहुँचना भी आवश्यक है। सबसे ज्यादा जरूरी तो उन गाँवों में पहुँचना है, जहाँ इक्के-दुक्के ग्राम-दान हुए हैं। अकेले ग्राम-दानवाले गाँव में मदद पहुँचती है, तो निकटवर्ती गाँववालों को ग्राम-दान करने की प्रेरणा होती है। इसलिए आप इस कार्य की ओर विशेष ध्यान दें।

ग्राम-दानवाला विचार, ग्राम-संकल्प का विचार और आपका काम, ये सब एकरस हो सकते हैं, होने चाहिए, ताकि आपको ग्राम-स्वराज्य के दर्शन हो सकें। खादी का काम ग्राम-स्वराज्य और ग्राम-संकल्प के आधार पर होगा, तभी वह टिकेगा और फलदायी होगा।

मैंने सर्वोदय-पात्र आदि जितने भी कार्यक्रम चलाए हैं, उनके सम्बन्ध में अभी मैं कुछ नहीं कहना चाहता। सम्मेलन में कहूँगा। लेकिन इस समय मुझे इतना अवश्य कहना है कि मैंने ग्राम-दान का सुझाव प्रस्तुत किया है, वह अमल में लाने लायक है। इसके लिए, हमारे सारे कार्यकर्ता, चाहे वे जनाधारित रहनेवाले हों या सरकाराधारित, सब-के-सब मिलकर निर्माण कार्य में सहयोग दें। घर-घर में सर्वोदय-पात्र रखें। मैंने संक्षेप में आप के सामने इतनी-सी बातें रखी। अभी ये काफी हैं।

◆◆◆

आदर्श समाज हंसवर्ण है

"दुनिया में कितने ही गाँव हो गये। रोम आया और गया, विजयनगर आया और गया। पता ही नहीं है, इन शहरों का। परन्तु मनुष्य की स्मृति में गोकुल कायम है। क्योंकि वह एक आदर्श गाँव था। सब भाई-भाई के समान रहते थे। सब बच्चों को खाने को मक्खन मिलता था। परन्तु भाई-भाई के तौर पर रहना—यह भी वेद से सहन नहीं हुआ। क्योंकि भाई-भाई में भी एक अण्णा (बड़ा भाई) और दूसरा तंबी (छोटा भाई) होता है। वेद कहता है: 'अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः'—जिसमें कोई श्रेष्ठ नहीं है, कोई कनिष्ठ नहीं है, वैसे भाई। एक मंत्र में तो एक बात और जोड़ दी है, "अ मध्यमः" याने जिसमें मध्यम भी कोई नहीं है। केवल मिडिल क्लास ही रह जायेगा, तो मुश्किल हो जायेगी। सबके सब भगवान के सेवक हैं। आदर्श समाज का वर्णन हमारा यहाँ चातुर्वर्ण नहीं है। आदर्श समाज हंसवर्ण है, याने जिसका एक ही वर्ण है। वह हंसवर्ण हंस के अंग के समान निष्पाप, निष्कलंक, निर्मल है। यह हमारा आदर्श है। भू-दान, ग्राम-दान में हम हर एक गाँव को गोकुल बनना चाहते हैं।"

अनुक्रम

१. शुद्धि और व्यापकता में कोई विरोध नहीं···
सर्वोदयनगर १ मार्च '५९ पृ० २२९
२. गाँवों के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने···
सर्वोदयनगर २७ फरवरी " " २३३

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता: गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन: १३९१ तार: 'सर्व-सेवा' वाराणसी।